International Journal of
Global Multidisciplinary Research and Analytics

IJGMRA | ISSN (Online): 3107-6483
July-September 2025 | Vol. 01 | Issue 2

Website: www.thearyapublication.com

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें: अन्याय के विरुद्ध जन-आवाज़

डॉ. पूनम चौहान*

*असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत
ई-मेल: poonam.chauhan402@gmail.com

DOI: http://doi.org/10.5281/zenodo.17314444

Accepted on: 04/09/2025 Published on: 10/10/2025

सारांश:

साहित्य समाज का प्रतिबिंब होता है। जिस प्रकार समाज में समयानुसार सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों की प्रक्रिया सतत चलती रहती है, उसी प्रकार साहित्य भी उन परिवर्तनों से प्रभावित होकर नए रूपों में अभिव्यक्त होता है। हिंदी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो आदिकाल से लेकर उत्तर आधुनिक युग तक विभिन्न साहित्यकारों ने समाज के विविध पक्षों को अनेक विधाओं—जैसे गीत, ग़ज़ल, कहानी, नाटक, लघुकथा आदि—के माध्यम से प्रस्तुत किया है। दुष्यंत कुमार ऐसे ही रचनाकार हैं जिन्होंने साहित्य को केवल भावों की अभिव्यक्ति तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक चेतना का माध्यम बनाया। वे प्रगतिशील चेतना से युक्त कवि थे, जिन्होंने समाज की घटनाओं पर गहन दृष्टि रखते हुए उन्हें अपनी रचनाओं में जीवंत रूप दिया। उन्होंने मेहनतकश वर्ग की पीड़ा को केवल देखा नहीं, बल्कि उसे अनुभव कर अपने काव्य का केंद्रीय विषय बनाया।

***मुख्य शब्द**: व्यवस्था, अभिव्यक्ति, अंत्योदय, ग़ज़ल, साहित्य, सामाजिक।*

जब किसी रचनाकार का अंतर्मन सामाजिक विषमताओं से व्यथित होकर उसे शब्दों में ढालता है, तब वह साहित्य केवल कलात्मक अभिव्यक्ति न रहकर समाज के लिए एक धरोहर बन जाता है। ग़ज़ल, जो परंपरागत रूप से उर्दू की प्रमुख काव्य विधा मानी जाती थी, उसे दुष्यंत कुमार ने हिंदी में सशक्त रूप प्रदान किया। उन्होंने ग़ज़ल को केवल प्रेम और सौंदर्य की अभिव्यक्ति से निकालकर सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासनिक विसंगतियों के उद्घाटन का माध्यम बना दिया। दुष्यंत कुमार को उस कवि के रूप में स्मरण किया जाता है, जिन्होंने अंत्योदय की भावना से राष्ट्रवाद को जोड़ा। उन्होंने अपनी ग़ज़लों में युवाओं को संघर्ष के लिए प्रेरित किया और समाज के वंचित वर्ग की आवाज को स्वर दिया। उनकी रचनाएँ सामाजिक व्यवस्था की जड़ताओं के विरुद्ध जनसामान्य के प्रतिरोध का

प्रतीक बन गईं। दुष्यंत कुमार ने हिंदी ग़ज़ल को रूमानियत और श्रृंगारिकता से मुक्त कर उसे यथार्थवाद की दिशा में अग्रसर किया। उन्होंने अपने काव्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पक्षों का इतना प्रामाणिक और प्रभावशाली चित्रण किया है कि उनकी ग़ज़लें आज भी समाज के यथार्थ को प्रतिबिंबित करने वाली महत्वपूर्ण साहित्यिक उपलब्धि मानी जाती हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में अपेक्षित परिवर्तन नहीं हो सका। जिन वादों और सपनों के साथ भारत ने आज़ादी प्राप्त की थी, वे वादे धीरे-धीरे खोखले सिद्ध होने लगे। राजनीति में आई गिरावट, भ्रष्टाचार और सत्ता का केंद्रीकरण आम जनता के लिए भारी निराशा का कारण बना। देश के नागरिकों की आशाएं, जो स्वतंत्रता के साथ जागृत हुई थीं, समय के साथ बुझने लगीं। इसी सामाजिक विफलता और जनाकांक्षाओं के टूटने को दुष्यंत कुमार ने अपनी प्रसिद्ध ग़ज़ल—

" *कहां तो तय था चिरागाँ हर एक घर के लिए*

कहां चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए"

के माध्यम से अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया। साहित्य और समाज का गहरा संबंध होता है। साहित्य केवल कल्पनाओं का संसार नहीं, बल्कि समाज की सच्चाई का दर्पण होता है। भारत में लंबे समय तक ब्रिटिश शासन के दौरान आम जन अत्याचार और शोषण का शिकार रहा। 15 अगस्त 1947 को मिली आज़ादी के साथ नागरिकों में एक नई चेतना, उत्साह और आशाओं का संचार हुआ। लोगों को विश्वास था कि अब उन्हें अधिकार, सम्मान और बेहतर जीवन मिलेगा। परंतु आज़ादी के बाद भी परिस्थितियाँ ज्यों की त्यों बनी रहीं। रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी समस्याएं जस की तस बनी रहीं। सामाजिक असमानता और आर्थिक विषमता जारी रही। श्रमिक वर्ग आज़ाद भारत में भी पूँजीपतियों के हाथों शोषित होता रहा। यही यथार्थ जब दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में अभिव्यक्त होता है, तो वे केवल काव्य नहीं रह जातीं, बल्कि एक क्रांतिकारी सामाजिक दस्तावेज़ बन जाती हैं। आम आदमी सत्ता से न्याय की आस में जब अपना दम तोड़ने लगता है तो उसकी आवाज भी नहीं निकलती लेकिन दुष्यंत से यह पीड़ा सही नहीं गयी तब वह लिखते हैं

"भूख है तो सब्र कर,

रोटी नहीं तो क्या हुआ आजकल दिल्ली में है जेरे बहस यह मुद्दा"

दुष्यंत कुमार ने इस जनाक्रोश, असंतोष और मोहभंग को अपनी ग़ज़लों के माध्यम से मुखर किया। स्वतंत्रता से पहले दिए गए वादे— जो जनता को बेहतर जीवन के सपने दिखाते थे— स्वतंत्रता के पश्चात सिर्फ एक छलावा बनकर रह गए। सत्ता परिवर्तन हुआ, परंतु व्यवस्था की जड़ता यथावत बनी रही। दुष्यंत कुमार की रचनाएँ इसी गूंजते हुए यथार्थ की मार्मिक अभिव्यक्ति हैं। बौद्धिकता और वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ मानव जीवन में मानवीय मूल्यों का क्षरण होता जा रहा था। व्यक्ति के भीतर भावनाओं की जगह कृत्रिमता और यांत्रिकता ने ले ली थी। आत्मीयता, सहानुभूति और संवेदनशीलता जैसे गुण धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे थे। भावुकता का स्थान अब तर्क, आत्मकेंद्रितता और व्यवहारिकता ने ले लिया था। जीवन की गति तीव्र हो चली थी, परंतु उस गति में मनुष्य स्वाभाविकता खोता जा रहा था। मनुष्य अब मशीनों जैसा जीवन जीने लगा था—संवेदनाओं से रहित, केवल भौतिक उपलब्धियों के पीछे दौड़ता हुआ। सामाजिक संबंधों की ऊष्मा समाप्त हो रही थी और जीवन एक शुष्क, औपचारिक ढांचे में ढलता जा रहा था। इस समकालीन यथार्थ में तनाव, प्रतिस्पर्धा और असहिष्णुता सामान्य बनते जा रहे थे। दुष्यंत कुमार लिखते हैं

"यहां तो सिर्फ गूंगे और बहरे लोग बसते हैं

खुदा जाने यहां पर किस तरह जलसा हुआ होगा"

राजनीतिक क्षेत्र में भी स्थिति कुछ अलग नहीं थी। राजनेता चुनावों के समय स्वयं को आदर्शवादी, जनसेवक और ईमानदार दिखाते हुए जनता से वादों की झड़ी लगा देते थे। परंतु सत्ता प्राप्त होते ही उनका वास्तविक चेहरा सामने आ जाता। वे तरह-तरह के मुखौटे पहनकर केवल अपने स्वार्थ और सत्ता की सुरक्षा में जुट जाते। राजनीति छल, कपट और अवसरवाद की शरणस्थली बन गई थी। जनता, जो अब भी आशाओं और अपेक्षाओं से भरी हुई थी, इन नेताओं के छद्म आचरण को समझ नहीं पाती थी। वह बार-बार उनके झूठे आश्वासनों के भ्रमजाल में फँस जाती। इस प्रकार लोकतंत्र का स्वरूप विकृत होता गया और सत्ता जनसेवा की जगह व्यक्तिगत लाभ का माध्यम बनती चली गई। दुष्यंत कुमार उन रचनाकारों में से हैं जिन्होंने सत्ता-व्यवस्था की विडंबनाओं को कभी मौन स्वीकृति नहीं दी। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से शासन-प्रशासन की असंवेदनशीलता और निष्क्रियता पर तीव्र कटाक्ष किए। आम जनता के प्रति प्रशासन की जो उदासीनता है, वह कोई नई समस्या नहीं है; बल्कि यह एक ऐसी पुरानी बीमारी

है जो सत्ता के तंत्र में पीढ़ी दर पीढ़ी सड़न के रूप में समाई हुई है। उस वर्ग की मनोदशा को दुष्यंत ने समझा तभी कहते हैं

"तुम्हारे पाँवो के नीचे कोई जमीन नहीं
कमाल यह है कि फिर भी तुम्हें यकीन नहीं"

प्रशासनिक व्यवस्था में बैठे लोगों का आम नागरिक की वास्तविक पीड़ाओं से कोई सीधा जुड़ाव नहीं होता। वे वातानुकूलित कार्यालयों में बैठकर केवल आंकड़ों और रिपोर्टों की भाषा में आम जनता की कठिनाइयों को समझने का प्रयास करते हैं। उनके लिए पसीने की गंध केवल शोध और विश्लेषण का विषय होती है, न कि अनुभव की सच्चाई। आखिरी पंक्ति का वह व्यक्ति, जो न्याय की उम्मीद में जीता है, बार-बार केवल खोखले आश्वासनों के सहारे जीने को विवश होता है। उसके पास न तो कोई ठोस समर्थन होता है और न ही कोई स्पष्ट समाधान—बस वादों और उम्मीदों की गठरी सिर पर उठाए वह जीवन की कठिन राह पर चलता जाता है। यहाँ लोकतंत्र का संतुलन मानवीय गरिमा की अपेक्षा सत्ताधारियों के पक्ष में अधिक झुका रहता है। जब कोई आम आदमी अपने अधिकारों और न्याय की लड़ाई में पूरी तरह टूट जाता है, तो उसकी आवाज तक दबा दी जाती है। लेकिन दुष्यंत कुमार इस चुप्पी को स्वीकार नहीं कर पाते। वे इस पीड़ा को अपनी लेखनी के माध्यम से स्वर देते हैं और अन्याय के विरुद्ध एक मुखर प्रतिरोध का स्वर रचते हैं।

"मैं बेपनाह अंधेरों को सुबह कैसे कहूं
मैं इन नजारों का अंधा तमाशवीन नहीं"

आज जिस समाजवाद की चर्चा जोरों से होती है, उसकी बुनियाद संभवतः दुष्यंत कुमार जैसे विचारशील कवियों ने बहुत पहले ही रख दी थी। जब साहित्यकार सत्ता के दबाव में आकर मौन हो जाते हैं और उनकी कलम खामोश कर दी जाती है, तब सत्ता में बैठे लोग निरंकुश हो उठते हैं। सत्ता का मद जब चरम पर पहुँचता है, तो उसके अत्याचारों और अन्याय का भार आम आदमी को ही उठाना पड़ता है। ब्रिटिश शासन के दौरान जो शोषण जनता को झेलना पड़ा था, वह स्वतंत्र भारत में भी समाप्त नहीं हुआ; केवल शोषक बदले, शोषित वही रहे। आज़ादी के बाद भी आम जनजीवन की स्थिति में वास्तविक सुधार नहीं आया। सत्ता का चेहरा भले बदला हो, लेकिन उसके भीतर का स्वार्थ और संवेदनहीनता वैसी की वैसी बनी रही। दुष्यंत कुमार ने जब अपनी कविताओं और ग़ज़लों के माध्यम से व्यवस्था

की सड़ांध पर प्रहार करना शुरू किया, तब भी हालात बहुत अलग नहीं थे। सत्ताधारी तबका आम आदमी को केवल एक साधन के रूप में देखता था—ऐसा साधन, जिसकी मेहनत और पसीने से उनके वैभव और विलासिता के किले खड़े होते थे। जनता के अधिकारों और हकों की कोई वास्तविक परवाह नहीं की जाती थी।

"मस्लहत आमेज होते हैं सियासत के कदम तू न समझेगा सियासत,

अभी इन्सान है।"

दुष्यंत कुमार ने विपरीत परिस्थितियों में भी भारतीय संविधान को सर्वोच्च मान दिया और उसे आम जनमानस की आशा का केंद्र बनाए रखा। जनता को संविधान से केवल अधिकार नहीं, बल्कि एक बेहतर जीवन की उम्मीद थी—एक ऐसा सपना जिसे वे खुली और बंद दोनों आँखों से देखा करते थे। जब उन्होंने देखा कि उसी संविधान की शपथ लेने वाले लोग, आम नागरिकों को न्याय की चौखट पर दम तोड़ते देख रहे हैं, तब उनका कवि-हृदय व्यथित हो उठा। फिर भी वे संविधान में जनविश्वास को बनाए रखने के पक्षधर रहे। तभी वे कहते हैं

"सामान कुछ नहीं है, फटे हाल है

मगर झोले में उसके पास कोई संविधान है।"

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें महज़ प्रेम या सौंदर्य के चित्र नहीं हैं, बल्कि वे उस समाज की जीवंत व्यथा का दस्तावेज़ हैं जिसमें वे जीते थे। वे उन घटनाओं से आंदोलित होते हैं जो उनके आसपास घटती थीं और उन्हें अपनी कविता का विषय बनाते हैं। जब समाज में भौतिकता हावी हो जाती है, तो नैतिक मूल्यों की अपेक्षा व्यर्थ हो जाती है। ऐसे समय में दुष्यंत अंतिम पंक्ति के उस व्यक्ति की चिंता करते हैं, जिसे अभी भी न्याय और मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का इंतजार है। उनका "अंत्योदय" वही सपना है जिसमें अंतिम व्यक्ति के जीवन में तब तक कोई सार्थक परिवर्तन नहीं आता, जब तक वह न्याय और सम्मानपूर्वक जीवन न पा ले। स्वतंत्रता के बाद देश से तो अंग्रेज चले गए, पर आमजन के जीवन से अंधकार नहीं गया। नेता गांधीजी के वस्त्र तो पहनते रहे, लेकिन उनके विचारों से कोसों दूर रहे। समाजवाद की सच्ची कल्पना तब ही साकार होती है जब मजदूर को उसका मेहनताना उसके पसीने के सूखने से पहले मिल जाए।

"तक आते-आते सूख जाती हैं नदियां

मुझे मालूम है पानी कहां ठहरा होगा।"

आज़ादी के सपनों में आम जन ने जो कल्पनाएँ बुनी थीं, वे भ्रष्टाचार की बलि चढ़ गईं। सत्ता और व्यवस्था इतनी भ्रष्ट हो गई कि गरीबों के लिए भेजी गई सहायता भी अफसरों, नेताओं और बाबुओं की तिजोरियों की शोभा बढ़ाने लगी। ऐसे समय में दुष्यंत चुप नहीं रहते, वे व्यवस्था की जड़ पर शब्दों की चोट करते हैं। उनकी कविता शोषणकारी तंत्र पर करारी टिप्पणी बन जाती है। वे कहते नहीं, ललकारते हैं—और व्यवस्था को उसकी ही भाषा में जवाब देते हैं।

"यह सारा जिस्म झुक कर बोझ से दोहरा हुआ होगा

मैं सजदे में नहीं था आपको धोखा हुआ होगा "

दुष्यंत कुमार न केवल एक प्रखर कवि थे, बल्कि वे राष्ट्रवाद के वास्तविक संवाहक भी थे। उनके विचारों में राष्ट्र का मतलब महज़ भूमि का टुकड़ा नहीं, बल्कि उसमें बसने वाला प्रत्येक आम नागरिक था—भूखा, शोषित, वंचित और पीड़ित। उन्होंने जहाँ एक ओर भ्रष्टाचार और तंत्र की विफलताओं पर तीखा प्रहार किया, वहीं दूसरी ओर भूख से तड़पते बच्चों की वेदना को सत्ता के गलियारों तक पहुँचाने का प्रयास किया। दुष्यंत मानते हैं कि अन्याय और अत्याचार को चुपचाप सहने वाला व्यक्ति भी उतना ही दोषी है जितना कि उसे करने वाला। वे युवाओं से आह्वान करते हैं कि वे समता, स्वतंत्रता और न्याय की लड़ाई में किसी भी प्रकार का समझौता न करें। उनका संदेश स्पष्ट है—अन्याय के सामने सिर मत झुकाओ, बल्कि बनो वह आवाज़ जो उन मजलूमों, शोषितों और हाशिये पर खड़े लोगों के हक़ की बात करे, जिनका योगदान राष्ट्र निर्माण में किसी भी अन्य वर्ग से कम नहीं है। दुष्यंत केवल व्यवस्था में सुधार की बात नहीं करते, वे मूलभूत परिवर्तन की बात करते हैं। वे मानते हैं कि जब समस्या केवल बीमारी नहीं बल्कि नासूर बन जाए, तो केवल औषधि पर्याप्त नहीं होती—तब शल्य चिकित्सा की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि वे कहते हैं—

"हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए

फिर कोई गंगा हिमालय से निकलनी चाहिए..

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं

मेरी कोशिश है कि यह सूरत बदलनी चाहिए"

निष्कर्ष:

दुष्यंत कुमार निस्संदेह हिंदी ग़ज़ल के एक युगांतरकारी और जनप्रिय कवि थे। उनकी ग़ज़लों का हर शेर केवल सौंदर्यबोध नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था पर एक प्रखर टिप्पणी है। उन्होंने सत्ता की ईंट दर ईंट जांची, और उन नींव के पत्थरों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया जिन्हें अक्सर अनदेखा कर दिया जाता है। आज हिंदी ग़ज़ल जिस सशक्त स्वरूप में साहित्य में स्थापित है, उसका श्रेय बहुत हद तक दुष्यंत कुमार को जाता है। उन्होंने ग़ज़ल को उर्दू की रूढ़ शैली और कठिन शब्दावली से निकालकर हिंदी की सहजता और जनभाषा से जोड़ा, जिससे यह विधा आम जन की आवाज़ बन सकी। उनकी ग़ज़लों में न केवल सामाजिक विडंबनाओं पर प्रहार था, बल्कि तत्कालीन समय में व्याप्त भाई-भतीजावाद, क्षेत्रवाद, सांप्रदायिकता और भाषायी खेमेबाजी जैसी समस्याओं पर भी गहन दृष्टि थी। दुष्यंत कुमार ने समाज में व्याप्त सांस्कृतिक और आर्थिक विषमताओं को न केवल पहचाना, बल्कि अपनी कलम के माध्यम से उन्हें मुखर भी किया। एक सच्चे साहित्यकार की भूमिका निभाते हुए उन्होंने न केवल आलोचना की, बल्कि एक वैकल्पिक सोच, एक नई दिशा देने का कार्य भी किया। उनकी लेखनी में वह शक्ति थी जो समाज को आईना दिखा सके और साथ ही परिवर्तन का मार्ग भी सुझा सके। उनकी साहित्य साधना केवल रचना नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना को जगाने का प्रयास थी।

संदर्भ:

- मालवीय, एस. (2025). *हिन्दी गजलों में सराहनीय है दुष्यंत कुमार की भूमिका*. www.hindi.webdunia.com. हिन्दी गजलों में सराहनीय है दुष्यंत कुमार की भूमिका। Dushyant Kumar Poet - Dushyant Kumar Poet | Webdunia Hindi
- आइबिद
- रणजीत (1960). *हिंदी के प्रगतिशील कवि*. पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस.
- कुमार, डी. (2023). *साये में धूप: दुष्यंत कुमार की गजलों का संग्रह*. राधाकृष्ण प्रकाशन.
- सिंह, वी. बी. (2014). *दुष्यंत कुमार की रचनावली(भाग- 2)*. किताबघर प्रकाशन.